द्वितीय अध्याय

श्री श्री माँ का ढाका आगमन

७ जनवरी, १९३७ ई. गुरुवार । कालेज से घर वापस आते ही सुना कि आज श्री श्री माँ आनन्दमयी ढाका पहुँच रही हैं । इस समाचार से बड़ी प्रसन्नता हुई । इस वक्त कुछ जरूरी कार्य करना था जिसे कल के लिए छोड़ना कठिन है । अब दोनों काम कैसे निपटाया जाय, इसी ऊहापोह में खो गया । बहरहाल घर से चलकर दो–चार मित्रों को समाचार देकर घर पर भोजन किया । इसके बाद स्टेशन की ओर चल पड़ा । स्टेशन पर श्रीयुत् भूपतिनाथ मित्र, श्रीयुत् नगेन्द्रनाथ राय, श्रीयुत् यतीन्द्रनाथ दासगुप्त आदि से मुलाकात हुई । सभी लोगों के साथ नारायणगंज की ओर रवाना हुआ ।

गाड़ी जिस वक्त नारायणगंज पहुँची तब देखा गया कि ग्वालन्दो का जहाज घाट किनारे लग रहा है । हम लोग फ्लैट पर जाकर खड़े हुए । वहीं से हम लोगों ने खुकुनी दीदी ओर माँ को देखा । शिशिर भी जहाज पर से रूमाल हिलाते हुए माँ के आगमन की सूचना देने लगा । इसी जहाज पर मिस्टर जिन्ना, मंत्री खां बहादुर अजीजुल हक आदि ढाका आ रहे थे । इनके स्वागत के लिए काफी तादाद में मुसलमान स्वयंसेवक घाट पर उपस्थित थे । लोगों की भीड़ कम होने के बाद हम लोग जहाज पर गये । तबतक माँ ऊपर से नीचे चली आयी थीं। हम लोगों ने सीढ़ी के पास उन्हें तथा बाबा भोलानाथ को प्रणाम किया। बाद में सभी लोग एक साथ गाड़ी की ओर बढ़े । चलते समय शिशिर की जबानी पता चला कि हम लोगों के नवद्वीप से वापस आने के बाद वहां नगरसंकीर्तन हुआ था।

नवद्वीप में रहते वक्त ही सुना था कि ३० पौष (१८ जनवरी) को माँ विंध्याचल में रहेंगी । इधर मां को २२ (७ जनवरी) तारीख को ढ़ाका में देखकर संदेह हुआ कि संभवतः माँ यहां अधिक दिनों तक नहीं ठहरेंगी । जहाज पर ही मैंने खुकुनी दीदी से पूछा था कि माँ ढ़ाका में कितने दिनों तक रहेंगी ?

दीदी ने कहा–"सिर्फ तीन दिन ।"

बाद में पता चला कि माँ गरजवश ढाका आई हैं । इतने कम समय के लिए बाबा भोलानाथ यहां आने को राजी नहीं हो रहे थे। सुना मां ने कहा था–"एक दिन के लिए सही, ढाका जाना अच्छा होगा।"

गाड़ी पर बैठे–बैठे नवद्वीप की कहानी सुनने लगा । ज्योतिष बाबू बाबा भोलानाथ के पहले ही नवद्वीप में आ गये थे । बाबा भोलानाथ जिस दिन नवद्वीप पहुँचे, उसी दिन रात को माँ ने नवद्वीप छोड़ने की इच्छा प्रकट की । द्वारिकाधाम से लम्बी यात्रा करके थके–मांदे बाबा भोलानाथ नवद्वीप आये थे । उनके लिए विश्राम आवश्यक था । लेकिन माँ नवद्वीप छोड़ने की घोषणा पहले ही कर चुकी थीं । इसमें व्यतिक्रम नहीं हो सकता था । फलतः सभी लोग रात को १०–११ बजे रवाना होने की तैयारी करने लगे । इस पर भोलानाथ असंतुष्ट हो गये । मुझे लगा जैसे बाबा भोलानाथ की आकृति पर अभी तक अप्रसन्नता की छाप है । सहसा नवद्वीप छोड़ने के कारण वहाँ के भक्तों को अपार कष्ट हुआ था । नवद्वीप के निवासी क्रमशः माँ के प्रति अधिक अनुरक्त हो गये थे। जिन दिनों मैं नवद्वीप में था, उन दिनों लोगों को कहते सुना था–"कितने साधु–संन्यासी नवद्वीप में आये, पर ऐसा कोई देखने में नहीं आया ।"

नवद्वीप के बारे में जब इस तरह की बातें हो रही थीं तभी मैंने माँ से पूछा–माँ हम लोगों के चले आने के बाद तुम नगर–कीर्तन में घूमती रही ?

माँ ने इसे अस्वीकार किया । लेकिन बाबा भोलानाथ ने किंचित् क्रुद्ध भाव में इशारे से बताया कि माँ नगर संकीर्तन में गयी थी, यह बात वे सुन चुके हैं । उन्हें यह बात पसन्द नहीं आयी थी, यह उनके भाव से स्पष्ट हो गया । बाबा भोलानाथ का यह व्यवहार देखकर मैं जरा परेशान हो उठा ।

माँ ने भी शायद प्रबोध देने के लिए मुझे लक्ष्य करते हुए कहा– "तुम्हें याद होगा कि जिस दिन हम लोग सेवादासी के आश्रम में गये थे, उस दिन उसने मुझे कुछ खिलाने की इच्छा प्रकट की थी । लेकिन उस दिन मुझे बेबी भोग देने वाली थी, इसलिए मैं कुछ खाने को राजी नहीं हुई । आते समय कह आयी थी कि किसी दिन आकर खाऊँगी। बाद में एक दिन वायदे के अनुसार मैं सभी को लेकर माताजी (सेवादासी) के आश्रम में गयी । गंगा के किनारे–किनारे चल रही थी । मार्ग में नीतीश ने धीरे–धीरे कीर्तन करना प्रारंभ किया । जो लोग साथ चल रहे थे, उन लोगों ने सहयोग देना प्रारंभ किया । इसी प्रकार कीर्तन करते हुए हम लोग माताजी के आश्रम में आये । वहाँ भोगादि समाप्त होने के बाद ब्रजेन ने सोने का गौरांग देखने की इच्छा प्रकट की । उसने इस बात की जिद्द की कि मैं सभी लोगों को लेकर वहाँ दर्शन करने चलूँ । फलतः सभी को लेकर सोने का गौरांग दर्शन करने चल पड़ी । इस बार भी पहले की तरह कीर्तन करते हुए चलने लगे। इन लोगों को कीर्तन करते देख राह चलते रोग भी साथ देने लगे। चूँकी राह चलते लोगों ने भी कीर्तन में साथ देना शुरू किया था, इसलिए लोग समझ रहे थे कि एक विराट् कीर्तनियों का दल जा रहा है । इसके अलावा कीर्तन करने की इच्छा से हम लोग सड़क पर नहीं गये थे । रास्ते में जो कीर्तन हुआ और लोगों की भीड़ चल रही थी, वह अपने आप हो गयी थी ।"

इतना कहकर माँ चुप हो गयी । बाद में खुकुनी दीदी के निकट सुना कि श्री गौरांग प्रभु मन्दिर जाते समय माँ हाथ हिला-हिलाकर कीर्तनियों को उत्साह प्रदान कर रही थी । इससे कीर्तन काफी जम गया था । बहरहाल बाबा भोलानाथ का भाव देखते हुए मैंने फिर नवद्वीप के बारे में किसी प्रकार की चर्चा नहीं की । नारायणगंज से ढाका तक फिर कोई बात नहीं हुई ।

मिस्टर जिन्ना आदि के स्वागत के लिए ढाका स्टेशन पर काफी भीड़ एकत्रित हुई थी । हम लोग रेलगाड़ी से उतरकर घोड़ागाड़ी पर सवार हो रहे थे, ठीक इसी समय किसी ने आकर बताया कि दादा महाशय नहीं मिल रहे हैं । मैंने और शिव बाबू ने स्टेशन के भीतर-बाहर काफी खोजा, पर वे दिखाई नहीं दिये ।

अन्त में जाकर माँ से कहा-"माँ, दादा महाशय नहीं दिखाई दिये । कहाँ खोजा जाय ?"

माँ ने कहा-"तुम लोगों के दादा महाशय को मैंने स्टेशन से बाहर निकलने वाले मार्ग में भीड़ के बीच देखा था ।"

अब हम लोग उस ओर बढ़ें । इधर माँ की गाड़ी आश्रम की ओर चल पड़ी । हम लोग कुछ देर खोजने के बाद निराश होकर आश्रम की ओर चल पड़े । आश्रम के पास हमने देखा कि माँ के साथ दादा महाशय आश्रम के भीतर जा रहे हैं । भूपति बाबू माँ की गाड़ी पर थे ।

उनसे पूछने पर पता चला कि स्टेशन पर जब दादा महाशय नहीं मिले तब श्री श्री माँ की इच्छानुसार गाड़ी आश्रम की ओर बढ़ा दी गयी । स्टेशन से आश्रम आते समय जिस सड़क से गाड़ी आती है, उधर से न आकर दूसरे मार्ग से चलने की आज्ञा माँ ने दी । जब गाड़ी कुछ दूर निकल आयी तब माँ ने कहा-"देखो, तुम लोगों के दादा महाशय की तरह एक व्यक्ति दिखाई दे रहा है ।"

वास्तव में दादा महाशय पैदल जा रहे थे । गाड़ी रोककर उन्हें गाड़ी पर बैठा लिया गया । गाड़ी दूसरे मार्ग से चक्कर काटती हुई आयी और स्टेशन से देर से चलने के कारण लगभग सभी लोग एक साथ आश्रम में आये ।

शाम के बाद माँ नाम-घर में आकर बैठीं । महिलाएँ माँ की दाहिनी ओर और पुरुष बायीं ओर बैठे । तरह-तरह की बातें होने लगीं । भोलानाथ के बहनोई कुशारी महाशय[1] की चर्चा चल पड़ी । इनके एक लायक पुत्र के देहान्त हो जाने के कारण आप तथा आपकी पत्नी अत्यन्त शोकाकुल हो उठे है । इसके अलावा कुशारी महाशय स्वयं ही अस्वस्थ है। इस बार जब माँ इनसे मिलने गयी तो देखा कि पुत्र-शोक काफी हल्का हो गया है ।

उन्होंने माँ से कहा था-"माँ, तुम दो बार कलकत्ता आयीं और विभिन्न जगह गयी, पर मुझसे मिलने नहीं आयी । इससे मुझे कोई कष्ट नहीं हुआ । तुम जब आती हो तब ठीक से तुम्हें अपने निकट नहीं पाता हूँ । चाहे तुम दूर रहो या पास, मेरे लिए बराबर है । हर हालत में तुम मेरे लिए दुरधिगम्य हो । शरीर का सान्निध्य ही सान्निध्य नहीं होता । मैं कैसे तुम्हारा सान्निध्य प्राप्त कर सकता हूँ?"

माँ ने कहा-"देखा, उनका भाव अच्छा है । लेकिन यह भाव अधिक देर तक नहीं रहा । इसके बाद ही उसने कहा-'माँ, जब तक तुम्हारे निकट बैठा हूँ तब तक ऐसा अनुभव करता हूँ जैसे निर्भय हूँ ।' उपस्थित लोगों ने कुशारी महाशय की बातों पर ध्यान नहीं दिया।"

इतना कहने के बाद माँ हँसने लगीं ।

---

१. श्रीयुत् काली प्रसन्न कुशारी । आप पुलिस इंस्पेक्टर थे ।

मैं ढका हूँ

श्रीयुत् प्रमथनाथ बसु महाशय ने प्रश्न किया–"माँ, तुम तो कहती हो कि 'मैं ढका हूँ', इसका क्या अर्थ है ?"

माँ–चिन्ता करने से पास में मिलता है । तुम लोगों के बारे में चिन्ता करती हुई तुम लोगों के पास हूँ ।

प्रमथ बाबू–पर तुम तो आँखों से दिखाई नहीं देतीं । अगर तुम पास रहो तो अपनी आँखों से देखा जा सकता है । इस तरह का उत्तर नहीं चाहता ।

माँ–मन में चिन्ता करना और आँखों से देखना, दोनों एक ही है । देखा होगा, जब अपने घर के बारे में चिन्ता करते हो तब तुम्हारे घर की तस्वीर आँखों के सामने तैरने लगती है ।

प्रमथ बाबू–मैं यह सब नहीं समझता । जिस बात को हम लोग समझ सकें, उस तरह कहो । तुम मेरे प्रश्न को समझ रही हो न?

माँ–तुम मेरी बात नहीं समझ पाते, इसलिए मैं तुम्हारी बात समझ नहीं पाती । छोटा बच्चा अगर मैट्रिक का विषय जानना चाहे तो उसे समय का इंतजार करना पड़ेगा । इसके लिए जितनी पुस्तकें पढ़नें की जरूरत हैं, पढ़नी पड़ेगी । तब जाकर वह उन विषयों को समझ सकेगा। तुम क्या मुझे उदला (आवरणमुक्त) होने को कहते हो ? अच्छा, मेरी उन बातों का क्या अर्थ समझा है, यह पहले बताओ ।

प्रमथ बाबू–'मैं ढका हूँ' का अर्थ यही समझा कि तुम गुप्त हो। मेरा कहना है कि तुम प्रकट हो जाओ ।

माँ–ठीक है । मुझे उदला करने का प्रयत्न करो ।

प्रमथ बाबू–अगर तुम स्वयं प्रकाशित नहीं होओगी तो हम लोग कैसे प्रकाशित करेंगे ?

माँ–तुम लोग अपने साध्य के अनुसार प्रयत्न करो । बाकी वे कर देंगे । तुम लोग कर्म समाप्त कर लो । इसके बाद जो होना होगा, अपने आप हो जायगा ।

प्रमथ बाबू – तुमसे भी क्या अपने कर्मों के बारे में निर्देश सुनना होगा ?

माँ–हाँ ।

प्रमथ बाबू साधन–भजन के माध्यम से भगवान् को प्राप्त करना पसन्द नहीं करते । ये सोलहो आना कृपापन्थी हैं । माँ ने कर्म पर जब जोर दिया तो दबे नहीं ।

उन्होंने कहा–"माँ, मेरे विचार से भगवान् को प्राप्त करने का एक सरल मार्ग है । तुम हम लोगों की माँ हो और हम सब तुम्हारी सन्तान । तुम्हें प्राप्त करने, माँ को प्राप्त करने के लिए सन्तान को प्रयत्न करने की क्या आवश्यकता है ? सन्तान के प्रति आकर्षण से ही माँ बच्चे को गोद में उठा लेंगी । मैं तो यही समझता हूँ । यह सच है कि नहीं ?"

माँ–हाँ, सत्य है ।

"बस और कुछ नहीं चाहता ।" इतना कहकर प्रमथ बाबू उठकर खड़े हो गये ।

माँ–'बस' कहने से कुछ थोड़े ही होगा ? इस तरह तुम कितनी देर रख सकोगे । लड़का होकर मां की बात सुननी चाहिए । जो करने को कह रही हूँ, उसे करो ।

भोग के अन्त में समता की प्राप्ति

इसके बाद श्रीमती साधना की मौसी ने माँ से कहा–"माँ, नाना प्रकार की ज्वाला–यंत्रणा में जल रही हूँ ।"

माँ–(हँसकर) यह तो अच्छा है ।

प्रश्नकर्त्रीके मन में जो भाव रहे हों, उन्होंने खेद के साथ कहा–"क्या तुम यही चाहती हो ?"

माँ–(हँसकर) देहधारण भोग के लिए है, फलतः रोगशोकादि कष्ट होने पर सोचना चाहिए कि भोग कटता जा रहा है । शरीर रहने पर ज्वाला–यंत्रणा होगी ही । जल–जलकर अंगारा बनना पड़ेगा । अंगार आगे चलकर राख हो जायगा । तब जाकर ज्वाला समाप्त होगी । अभी लकड़ी है, इसलिए ज्वाला अनुभव कर रही हो ? जब राख हो जायगा तब आग नहीं रहेगी, ज्वाला भी नहीं रहेगी । उस समय जो भाव आयेगा, उसी भाव के साथ मिल जायगा । देखा होगा, राख शरीर पर पोतने पर शरीर के साथ मिल जाता है । दूसरी ओर पानी में मिलाने से पानी में घुल जाता है ।

वासना–माँ, आजकल तुम हम लोगों को नहीं चाहती ।

माँ–तुम लोग मुझे चाहो या न चाहो, तुम लोगों के बिना मेरा चलता नहीं ।

इतना कहकर माँ खूब हँसने लगी ।

शुद्धभाव से परमात्मा तुष्ट और पुष्ट होते हैं

अध्यापक श्रीयुत् सत्येन्द्रनाथ भंद्र महाशय की कन्या श्रीमती अरुणा माँ के निकट बैठी थी । बी. ए. पास करने के बाद आप आनन्दमयी गर्ल्स स्कूल में अध्यापन कर रही हैं । माँ ने उनसे पूछा–"तेरी पढ़ाई–लिखाई क्या समाप्त हो गयी है ? आजकल तू क्या कर रही है ?"

अरुणा–नौकरी कर रही हूँ ।

माँ–कितना पाती है । कितना जुटा पायी है । मुझे खिलाने के बाद कुछ जुटाकर रखना पड़ेगा ।

इतना कहकर माँ हँसने लगी ।

अरुणा–तुम्हारी बात का मतलब नहीं समझी ।

माँ–मेरी बात का अर्थ क्या है ।

यही प्रश्न माँ सभी से पूछने लगीं । मेरी ओर देखती हुई माँ ने कहा–"तुम तो चुपचाप पीछे बैठे रहते हो । बताओ मेरी बातों का क्या अर्थ हैं ?"

माँ–(अरुणा से) ज्ञान और अर्थ जो कुछ पा रही हो, उससे अभाव बढ़ता जा रहा है । इस प्रकार के ज्ञान और अर्थ से कोई लाभ नहीं।

अरुणा–तो क्या नौकरी छोड़ दूँ ?

माँ–यह क्यों ? सभी कर्मों में जिस प्रकार समय देते हो, उसी प्रकार सत्कर्म में भी समय दो । आहार, निद्रा, गप में समय बिताते हो । नाम के लिए अधिक से अधिक समय दो । नाम के लिए जो समय दोगे, वह बेकार नहीं जायेगा । वह संचय होता रहेगा । इसीलिए कहती हूँ कि मुझे खिलाना होगा, मेरे जीवन की रक्षा करनी होगी। अर्थ का उपार्जन वृथा नहीं हैं । इससे शरीर पुष्ट होता है, पर मन को भी पुष्ट करना चाहिए । इसीलिए कहती हूँ कि मन के खाद्य का संचय करो । तुम स्कूल में काम कर रही हो । स्कूल के काम के पीछे नित्य ३–४ घण्टा समय लगता है । इन ३–४ घण्टों के अलावा जिस प्रकार अपने स्कूल के कार्यों के बारे में दिनभर अक्सर याद आती है, उसी प्रकार धर्मभाव बढ़ाने पर वह भी सांसारिक कार्यो में सर्वदा मन में जगती रहेंगी । इसी प्रकार सद्भाव को बढ़ाना चाहिए।

माँ जब यह बातें कर रही थी, उसी समय माँ से गोपनीय बात कहने के लिए एक सज्जन माँ को ले गये । अब माँ के साथ कोई बातचीत नहीं हो सकती जानकर हम लोग चले आये ।

घर न आकर आश्रम में एक जगह खड़ा होकर खुकुनी दीदी से बातें करने लगा । दीदी के निकट सुना कि जब हम लोग नवद्वीप से चले आये तब माँ महिलाओं को लेकर एक दिन कीर्तन करती

रहीं। धर्मशाले के जिस कमरे में माँ रहती थीं, उसी घर में कीर्तन होता रहा । पुरुषों को कमरे से बाहर कर दिया गया था । कमरे की खिड़की और दरवाजे बन्द करके कीर्तन किया गया था । उस कीर्तन में लोगों को भावावेश हुआ था । किस प्रकार कीर्तन करना चाहिए, इस सम्बन्ध में उस दिन माँ सभी महिलाओं को उपदेश देती रहीं ।

माँ ने कहा था–कीर्तन में उछल–कूद करना ठीक नहीं हैं । धीर भाव से करना चाहिए तभी कीर्तन में फल की प्राप्ति होती है ।

दीदी से यह भी पता चला कि जिस दिन माँ कीर्तन करनेवाले के साथ सोने का गौरांग देखने गयी थीं, उस दिन एक कुत्ते ने इतनी भीड़ को हटाते हुए माँ के चरणों के समीप आकर आश्रय ग्रहण किया था । उसे भगाने का काफी प्रयत्न करने पर भी वह भागा नहीं । अन्त में माँ ने कहा कि पैर के पास पड़े रहने दो ।

श्री श्री माँ का सम्प्रदाय

दीदी ने कहा कि नवद्वीप में रहते समय एक दिन एक पण्डित माँ से मिलने के लिए आये थे । बातचीत के बीच उन्होने माँ से पूछा कि आप किस सम्प्रदाय की हैं ?

उत्तर में माँ ने कहा था–"सम्प्रदाय से मतलब गुरु से होता है। बचपन में मेरे गुरु माता–पिता थे । विवाह के बाद पति गुरु हुए। और अब तुम सभी हो । यहाँ तक कि पेड़–पौधे भी मेरे गुरु हैं। अब स्वयं ही समझ लो कि मैं किस सम्प्रदाय की हूँ ।"

पण्डित पीछे हटनेवाले व्यक्ति नहीं थे । उन्होंने कहा–"अगर मैं सबेरे से शाम तक तुम्हारा कार्य–कलाप देख पाता तो निश्चित रूप से बता सकता था कि तुम किस सम्प्रदाय की हो ।"

२४ पौष, १३४३ फ. बंगाब्द, शुक्रवार ८ जनवरी, १९३७ ई. । आज सवेरे कालेज का काम समाप्त कर जब आश्रम में आया तो पता चला कि माँ सिद्धेश्वरी गयी हैं । यह सुनकर अतुल ब्रह्मचारी और मैं सिद्धेश्वरी रवाना हो गये । कुछ दूर जाने के बाद पता चला कि मां सिद्धेश्वरी से श्रीयुत् अखिलचन्द्र चक्रवर्ती के घर गयी हैं । अखिल बाबू का लड़का अस्वस्थ है । फलतः वे अनुरोध करके माँ को ले गये हैं । यह सुनकर हम लोग अतुल बाबू के घर की ओर चल पड़े । रास्ते में ही माँ से मुलाकात हो गयी । माँ को प्रणाम करते ही माँ ने कहा–हम लोग कल की कलकत्ता जा रहे हैं ।

तीसरे पहर माँ के साथ मुलाकात या कोई बातचीत नहीं हुई । सुना कि विश्वविद्यालय की कुछ छात्राओं के साथ स्वामी अखण्डानन्द के कमरे में बातचीत कर रही हैं । शाम तक मैदान में बैठा प्रमथ बाबू से बातें करता रहा ।

आज रात को महिलाओं को लेकर माँ कीर्तन करनेवाली हैं । सभी महिलाओं को माला–चन्दन साथ में लाने को कहा गया है । शाम को घर वापस आकर जलपान किया । इसके बाद पत्नी और लड़कियों को लेकर पुनः आश्रम में आया ।

आश्रम आने पर देखा कि माँ नामघर में बैठी हैं । स्त्री–पुरुषों की काफी भीड़ हैं । मैं भीतर जाकर एक जगह बैठ गया । श्रीयुक्त नगेन्द्र दत्त महाशय नवद्वीप से एक साधु को ले आये हैं । वह साधु माँ को कीर्तन सुना रहा है । वाद्यहीन कीर्तन जम नहीं पा रहा था। गीत कुछ लम्बा भी था ।

योगमाया और महामाया एक ही है

गायन समाप्त होने के बाद साधु ने माँ से कहा–"माँ, तुम लोग पतितों का उद्धार करने आती हो ।"

माँ – पतित उद्धारण नाम है, यह तो तुम लोगों की जबानी सुना है ।

साधु–माँ, तुम छलना मत करो ।

माँ–चलन रहने पर छलना चलती है ।

मुझे लगा जैसे माँ अत्यन्त संक्षेप में जवाब दे रही हैं । माँ की बातों का अर्थ स्पष्ट रूप से नहीं समझ सका, पर मन ही मन एक अर्थ लगा लिया ।

नगेन्द्र दत्त महाशय ने कहा–"तुम्हारी तो सिर्फ छलना ही चल रही है ।"

माँ–छलना कहाँ चलती है ? तुम लोगों का स्वभाव ही छलना है । उनकी (अर्थात् भगवान् की) छलना न रहती तो आनंद न मिलता।

साधु–भगवान् की छलना तो रसिक की छलना है । आप हम लोगों से दूसरे प्रकार की छलना कर रही हैं ।

माँ–एक को छोड़ देने पर दूसरा नहीं रहता । इसीलिए कहती हूँ कि योगमाया और महामाया एक ही हैं । हमलोग अज्ञानी हैं, इसलिए इन दोनों को अलग–अलग मानते हैं । कैसे हम ज्ञान प्राप्त करेंगे, इसे भी नहीं जानते । यहाँ तक कि हम ठीक–ठीक जिद्द या अभिमान करना भी नहीं जानते । क्योंकि इसी में हम लोगों की कामना–वासना रहती है । जब तक कामना–वासना रहेगी तब तक प्रकृत तत्त्व हमारे निकट प्रकट नहीं होगा ।

वैषयिक विषय में स्वावलम्बन, कृपा केवल धर्म के संबंध में

नगेन बाबू–किसने हमारे शुद्ध स्वरूप को ढाककर रखा है ।

इस प्रश्न का उत्तर स्पष्ट रूप से न देकर माँ ने नगेन्द्र बाबू से पलटकर प्रश्न किया–"गतागति समझो किस रूप में ? संसार में कुछ भी भिन्न रूप में नहीं जा रहा है । सभी एक साथ जा रहे है। सृष्टि, स्थिति, लय सभी एकत्र चल रहे हैं । गृहस्थी चलाते समय

सब सामान इधर–उधर कर चुके हो । इसीलिए तुम लोगों के भीतर पेंच लगा हुआ है । गृहस्थी को तह की तरह सजाकर रखना चाहिए। इससे कोई गड़बड़ी नहीं होती । जिस तरह तह लगाओगे, उसी प्रकार खोल सकोगे ।

नगेन बाबू–काश ! कोई तुम्हारे भीतर का पेंच खोलता ।

माँ–तुम सब अन्तर्द्रष्टा हो ।

माँ का उत्तर सुनकर नगेन बाबू झेंप गये । माँ के निकट से आध्यात्मिक तत्त्व न निकाल पाने के कारण निराश होकर बोले–"तुम तो परदेश घूम आयी हो । हम लोगों के लिए क्या लायी हो ?

माँ–मैं कहीं घूमने नहीं गयी । एक मकान के बाग में टहल रही हूँ । जब घर में टहल रही हूँ तब तुम लोगों के लिये क्यां लाऊँगी?

नगेन बाबू–यहाँ चालाकी नहीं चलेगी ।

माँ–(हँसकर) "क" "ख" ठीक से सीखा नहीं है और कहता है कि वह मोटीवाली किताब देना । वही पढ़ूंगा । पाठ बता देने पर भी पढ़ता नहीं, जो कहा जाता है करता नहीं । केवल बड़े–बड़े प्रश्न पूछता है ।

नगेन बाबू–तुम हम लोगों को समझने क्यों नहीं देती ?

माँ–मैं समझने नहीं देती, कैसा ?

नगेन बाबू–तुम समझने नहीं देती । अगर तुम बुद्धि रूप में हम लोगों के हृदय में उदित हो जाओ तो हम लोग सब समझ सकते हैं। शास्त्रों में भी है–"या देवी सर्वभूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता ।"

माँ–खाने–पीने, घर–गृहस्थी के काम करने में हम लोग अपनी बुद्धि लगा सकते हैं । केवल इस बारे में "बुद्धिरूपेण संस्थिता ।"

माँ ने इस ढंग से कहा जिसे सुनकर उपस्थित सभी लोग हो–हो कर हँस पड़े ।

नगेन दत्त महाशय बार-बार माँ से आघात पाने के बावजूद दबे नहीं। उन्होंने कहा-"माँ तुम तो प्राणों की वासना जानती हो, तब जो चाहिए उसे क्यों नहीं देती ?"

माँ ने केवल यही कहा-"माँ कहाँ ?"

प्रबल प्रारब्ध से निस्तार कैसे ?

इसी समय हमारे विश्वविद्यालय के अध्यापक श्रीयुत् हरिप्रसन्न मुखोपाध्याय महाशय आये । मैंने उनके बैठने के लिए माँ के पास स्थान बना दिया । कुछ देर बैठने के बाद उन्होंने माँ से पूछा-"अक्सर मैं यह देखता हूँ कि अनिच्छा रहते हुए भी रिपुओं के वश में हो जाते हैं । इसका प्रतिकार क्या है ?"

माँ-हां, अक्सर मन इच्छा के विरुद्ध रिपुओं के वशीभूत हो जाता है । इसके प्रतिकार का उपाय यह है कि जिससे मन उसके वशीभूत न हो, ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये । पर व्याकुल होने पर व्यवस्था और कर्म दोनों ही होता है ।

हरि बाबू-लेकिन भोग रहने पर तो सद्भाव और सद्वृत्ति जागृत नहीं होगी ?

माँ-बच्चों को जिस प्रकार जबरन पढ़ाते हो, उसी प्रकार इस विषय में करना पड़ेगा । बच्चे पढ़ना-लिखना नहीं चाहते । पढ़ाई की अपेक्षा उन्हें खेल-कूद अधिक पसन्द आता है । लेकिन उनके बारे में तुम लोग कभी यह नहीं कहते कि खेलते-खेलते इनके खेलने को प्रवृत्ति समाप्त हो जाय, बाद में पढ़ेंगे-लिखेंगे । बच्चों में खेलने की इच्छा रहने पर भी जिस प्रकार तुम लोग जबरदस्ती पढ़ाते-लिखाते हो, धर्म के बारे में भी यही बात है । "दुर्लभ मनुष्य योनि प्राप्त करने पर मेरे दिन ऐसे ही गुजर जायेंगे । मैं भगवान् को प्राप्त नहीं कर सकता। पुनः मुझे जन्म-मृत्यु के भीतर से नाना प्रकार के कष्ट भोगने

पड़ेंगे।'' इस प्रकार की चिन्ता करते हुए नाम के प्रति रूचि लाना चाहिए। आनन्द और शान्ति सभी के लक्ष्य हैं । कीट–पतंग सभी यह आनन्द और शान्ति चाहते हैं । लेकिन पूर्ण आनन्द, पूर्ण शान्ति किसी भी जागतिक पदार्थ से प्राप्त नहीं कर सकते । मन शान्ति किसी भी जागतिक पदार्थ से प्राप्त नहीं कर सकते । मन अशान्त भाव से एक विषय से अन्य विषयों की ओर दौड़ लगा रहा है, वही भी इसी आनन्द और शान्ति प्राप्त करने के लिए ही । आनन्द और शान्ति पाने के लिए धन, मान, यश आदि जागतिक सामग्रियों के पीछे मन दौड़ता है । लेकिन यह सब खण्ड आनन्द उसे सुखी नहीं कर पा रहा है। वह चाहता है पूर्णानन्द । मन वह नहीं पा रहा है, इसलिए चंचल है । इसीलिए कहती हूँ कि मन को सुखाद्य दो । कीर्तन, ध्यान, नाम, जप इत्यादि मन का भोजन है । यह सब मन को देने पर एक दिन मन शान्त हो जायेगा। इसके अलावा कोई भी जागतिक सामग्री मन को दोगे तो वह शान्त नहीं होगा । जागतिक चीजों का स्वभाव ही है अभाव को जगाये रखना। देखा होगा कि किसी का ४–५ मकान रहने पर भी उसका अभाव समाप्त नहीं होता । उस समय भी वह सोचता रहता है कि अगर एक मकान और होता तो ठीक था । वहीं दूसरी ओर कई हजार रूपया संचय करने वाले की इच्छा और संचय करने की होती है । जागतिक रूप में सभी घटनाएँ इसी प्रकार होती हैं। केवल परम धन प्राप्त करने, ब्रह्म विद्या प्राप्त करने पर अभाव चला जाता है । यह धन व्यक्ति के स्वभाव को स्थित करता है । साधना करते समय निराश नहीं होना चाहिए । सर्वदा अपने को इसी प्रकार उत्साहित करना चाहिए कि मूर्ख बालक भी पढ़–लिखकर परम विद्वान हो सकता है तब अगर मैं प्रयत्न करूँ तो ब्रह्म को प्राप्त नहीं कर सकता ?

हरि बाबू–प्रवृत्ति अगर प्रबल हो तो शिक्षा कैसे हो सकती है? आपने बताया कि पिता जबरदस्ती बालक को शिक्षा देगा । लेकिन अगर ऐसा हो कि लड़का ही जबरदस्ती करके पिता को खेल में खींच ले तब उसे कौन शिक्षा देगा ?

माँ–(सन्तुष्ट होकर) तुमने ठीक पकड़ा है । सभी लोग ऐसे पकड़ नहीं पाते । लेकिन यह जान लो कि लड़का अपने बूढ़े पिता को खेल में खींचकर नहीं ले जा सकता ।

हरि बाबू–प्रबल प्रारब्ध का दमन नहीं होता । इसका क्या उपाय है, बताइये ।

माँ–ऐसे क्षेत्र में मैं भोग और त्याग के बीच मैत्री करने को कहती हूँ अर्थात् भोग को जब बिलकुल छोड़ नहीं सकते तब भोग करते–करते उसके बीच अभ्यास करना उचित है। जैसे सप्ताह में छः दिन खूब ठाठ से भोजन किया और एक दिन केवल भात और आलू खाया। इसी प्रकार करते–करते क्रमशः भोग–वासना में कमी हो जाती है। यह भी जान लो कि जब मनुष्य योनि में जन्म लिया है तब कुछ सुकृति है। अगर कुछ सुकृति नहीं रहता तो मनुष्य योनि में जन्म नहीं होता। मनुष्य जन्म होने पर समझना चाहिए कि जीव आत्मज्ञान की धारा में आ गया है। तब इच्छा करने पर ऊपर उठ सकता है। दूसरी ओर नीच जन्म भी ग्रहण कर सकता है। फलतः मनुष्य जन्म प्राप्त करने के कारण कम के कम तपस्या की दृष्टि से कुछ समय जबरन भगवान् का नाम लेना उचित है। यह सच है कि अगर प्रबल प्रारब्ध विरुद्ध रहे तो सद्भाव लेकर अधिक दिनों तक नहीं रहा जा सकता। बीच–बीच में त्रुटि–विच्युति हो सकती है। लेकिन प्रबल प्रारब्ध के विरुद्ध कुछ नहीं होता, यह करना कठिन है। सत्पथ में अग्रसर होने की चेष्टा करने पर उसका एक छाप मन पर पड़ता है। वहीं दूसरी ओर अक्सर

अनुताप के रूप में आकर व्यक्ति को सत्पथ की ओर चालित करने की चेष्टा करता है। यही सत्संग का रूप है। वह भी मन पर प्रभाव डाल जाता है। तुम लोग जिसे संन्यास–संन्यास कहते हो, वह गेरुआ पहनने से नहीं होता। संन्यास होता है अपने स्वभाव के गुण से। जैसे पेड़ की जड़ में पानी देने पर फल–फूल अपने आप होता है उसी प्रकार भगवान् का नाम लेकर पड़े रहने पर अपने आप संन्यास भाव जाग उठता है। वास्तविक संन्यास–भाव जाग उठने पर देवता भी प्रलोभन देकर संन्यासी को रोक नहीं पाते। इसीलिए कहती हूँ कि भगवान् का नाम लेते चलो। कुछ नहीं होता, यह सत्य नहीं है। जीवमात्र ही आनन्द का खिलौना है। वह खण्ड आनन्द में तुष्ट नहीं होगा। जिसमें वह पूर्ण आनन्द प्राप्त कर सके, इसके लिए प्रयत्न करो।

हरिप्रसन्न बाबू प्रसन्न होकर माँ को प्रणाम करने के पश्चात् चले गये। इसी समय बाउल बाबू आ गये।

वे माँ के निकट बैठते ही बोले–"तुम स्थिर कब होओगी ?"

माँ–जो स्थिर हैं, वे अस्थिर नहीं हैं।

बाउल बाबू–सगुण क्या निर्गुण नहीं होता ?

माँ–सगुण कहीं निर्गुण होता है ? जीव कहीं शिव होता है ?

बाउल बाबू – तुम चतुर महिला हो। बातचीत में तुमसे जीतना कठिन है।

माँ – तुम शायद पुरुष होकर बेठे हो ? (सभी हँस पड़े) तुम्हारी नारी कहाँ है ?

इसी प्रकार माँ के साथ बाउल बाबू का वाक्–युद्ध प्रारम्भ हो गया। बाउल बाबू विजय प्राप्त नहीं कर सके तो गीत गाने लगे –

"तुइ कि जानिवि नारि के मन" इत्यादि।

यह गीत समाप्त होने पर पुनः गाने लगे–

"पुरान कथा जागिये दे रे

उहा नूतन हये उठुक फुटे।" इत्यादि।

इसके बाद एक पर एक गीत बाउल बाबू गाते रहे। बाउल बाबू का गायन सुनकर बाबा भोलानाथ नामघर के उत्तर की ओर आकर खड़े हो गये और बाउल बाबू को इशारे से बुलाया।

माँ ने बाउल बाबू से कहा–"अब जाकर दोनों व्यक्ति कलम पकड़ो।"

बाबा भोलानाथ का मौन चल रहा है, फलतः लोगों में बात–चीत करने के लिए कलम–दावात की जरूरत होगी।

बाउल (माँ से) – अगर तुम स्याही नहीं बनी तो कलम लेकर क्या करूँगा ?

माँ – भोलानाथ के निकट स्याही–कलम दोनों ही है।

बाउल बाबू बातों के माध्यम से माँ को लाजवाब बनाने की आशा छोड़ उठ खड़े हुए और जाते हुए बोले – "कंजूस मत बनो, सब लूटा दो।"

माँ – (हँसकर) बाउल के निकट सब भण्डार।

बाउल बाबू पुनः गाने लगे – "आय देखी मन करि चुरि।" इत्यादि।

गीत गाना बाउलों का हक होता है। लोगों की जबानी सुन चुका हूँ कि गीत गाते हुए बाउल बाबू साधन–भजन करते हैं। कभी गहरी रात को रमना की काली बाड़ी में बाउल बाबू को गाते सुना था। बाउल बाबू श्री श्री माँ के आदिभक्त हैं। बाउल बाबू के जाने के बाद

माँ ने हम लोगों से कहा – "सिद्धेश्वरी मन्दिर जब सात दिनों के लिए रहने गयी थी तब उन दिनों बाउल वहाँ नित्य जाया करते थे। इतना कष्ट सहकर तुम लोग वहाँ कभी नहीं जा सकते थे। दिन भर यह स्कूल में काम करता था और रात को घूटने भर कीचड़ में चलता हुआ मेरे लिए फल लाया करता था। वही फल मैं खाती थी।

बाउल बाबू का गायन समाप्त होने के बाद प्रमथ बाबू ने दो एक गीत माँ को सुनाया। इस प्रकार रात के बारह बज गये। माँ के पास हम लोगों के ठहरने का समय समाप्त हो गया। कारण १२ बजे माँ महिलाओं को लेकर कीर्तन करने वाली हैं। उस समय हम लोगों को रहने की आज्ञा नहीं है। हम लोग घर चले आये। जो लोग रह गये, वे नामघर से हटकर अन्य कमरों में चले गये।

९ जनवरी, सन् १९३७ ई०, शनिवार। आज माँ ढाका से चली जाएँगी। सबेरे जाते ही खुकुनी दीदी की जबानी रात की घटना सुनने में आयी। कल शाम को गेण्डरिया से एक महिला माँ से मिलने के लिए आयी थीं। जब उन्होंने जाने की अनुमति माँगी तब उन्हें रात भर आश्रम में ठहर जाने के लिए कहा गया था। माँ की इच्छानुसार खुकुनी दीदी यह कह चुकी थी। रात में कीर्तन के समय यह महिला भावावेश में काफी लोटती–पोटती रहीं। बाद में पता लगा कि उक्त महिला भोला गिरि की शिष्या है।

रात तीन बजे कीर्तन खूब जम गया था। उसी समय स्वयं माँ गाती हुई सभी को आनन्द–विभोर करने लगीं। कीर्तन के भावावेश में माँ की धूप–वस्त्र द्वारा आरती की गयी थी। माँ और भी जगह महिलाओं के साथ कीर्तन कर चुकी हैं, पर इस तरह से आरती प्रथम बार हुई।

कीर्तन किस रूप में करना चाहिए, इस विषय पर माँ महिलाओं को उपदेश देती रहीं। कीर्तन आरम्भ करने से पूर्व महिलाओं से दस मिनट चुप रहने के लिए माँ ने कहा था और कीर्तन समाप्त होने के बाद भी दस मिनट चुप रहने का निर्देश दिया गया था। प्रत्येक रविवार को महिलाएँ जब कीर्तन करेंगी तब ऐसा करेंगी। इस समय जो कुछ दर्शन करोगी, उसे एक माह बाद दूसरों से कहोगी। कीर्तन खड़े–खड़े करना पड़ेगा ओर कमरे के दरवाजे बन्द कर देने पड़ेंगे ताकि दूसरे लोग देख न सकें।

आश्रम के बारे में माँ ने कुछ नये बन्दोबस्त किये। दीदी माँ के घर जाते समय मार्ग में माँ और भूपति बाबू में ये बातें होती रहीं। उस समय मैं मौजूद था।

माँ ने हम लोगों से कहा–"आश्रम की सारी व्यवस्थाएँ तुम लोगों को करना चाहिए। यह सब सांसारिक कार्य हैं। तुम लोग जैसे अपने घर के कार्य करते जा रहे हो, उसके साथ–साथ आश्रम के लिए सौदा वगैरह लाना आदि जो सामान्य कार्य है, उसे भी करना चाहिए। ब्रह्मचारियों को यह सब न करके पूजा–पाठ में लगे रहना चाहिए। जब उन लोगों ने घर–गृहस्थी का कार्य छोड़ दिया है तब उनके जिम्मे यह बोझ नहीं देना चाहिए। तुम लोग कुलदा को यह सब सारी बातें कहना।"

हम लोगों को कुलदा से यह सब नहीं कहना पड़ा। माँ ने स्वयं ही उनसे कह दिया था।

दीदी माँ के घर से माँ रमना की कालीबाड़ी में गयीं। वहाँ से आश्रम लौट आयीं। दोपहर के ११ बजे। माँ, खुकुनी दीदी आदि भोजनादि के पश्चात् तैयार हुए। हम लोग श्री श्री माँ के साथ नारायणगंज तक गये। वहाँ माँ से विदा लेकर २–३० पर ढाका वापस आ गये।